28

न्यायिक सक्रियता

(Judicial Activism)

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा अमेरिका में पैदा हुई और विकसित हुई। यह शब्दावली पहली बार 1947 में आर्थर शेल्सिंगर जूनियर (Arthur Schlesinger Jr.), एक अमेरिकी इतिहासकार एवं शिक्षा प्रदायक[1] द्वारा प्रयुक्त हुई।

भारत में न्यायिक सक्रियता का सिद्धांत 1970 के दशक के मध्य में आया। न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर, न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती, न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी तथा न्यायमूर्ति डी.ए. देसाई ने देश में न्यायिक सक्रियता की नींव रखी।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ

न्यायिक सक्रियता का आशय नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए तथा समाज में न्याय को बढ़ावा देने के लिए न्यायपालिका द्वारा आगे बढ़कर भूमिका लेने से है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है न्यायपालिका द्वारा सरकार के अन्य दो अंगों (विधायिका एवं कार्यपालिका) को अपने संवैधानिक दायित्वों के पालन के लिए बाध्य करना।

न्यायिक सक्रियता को 'न्यायिक गतिशीलता' भी कहते हैं। यह 'न्यायिक संयम' के बिल्कुल विपरीत है जिसका मतलब है न्यायपालिका द्वारा आत्म-नियंत्रण बनाए रखना।

न्यायिक सक्रियता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है:

1. ''न्यायिक सक्रियता न्यायिक शक्ति के उपयोग का एक तरीका है जो कि न्यायाधीश को प्रेरित करता है कि वह सामान्य रुप से व्यवहरत सख्त न्यायिक प्रक्रियाओं एवं पूर्व नियमों को प्रगतिशील एवं नयी सामाजिक नीतियों के पक्ष में त्याग दे। इसमें ऐसे निर्णय देखने में आते हैं जिसमें सामाजिक अभियंत्रण अथवा इंजीनियरिंग होता है, अनेक अवसरों पर विधायिका एवं कार्यपालिका संबंधी मामलों में दखलंदाजी भी होती है।''[2]
2. ''न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका का वह चलन है जिसमें वैयक्तिक अधिकारों को ऐसे निर्णयों द्वारा संरक्षित या विस्तारित किया जाता है जो कि पूर्व नियमों या परिपाटियों से अलग हटकर होते हैं, अथवा वांछित या करणीय संवैधानिक या विधायी इरादे से स्वतंत्र अथवा उसके विरुद्ध हों।[3]

न्यायिक सक्रियता की अवधारणा जनहित याचिका की अवधारणा से निकटता से जुड़ी है। यह सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक सक्रियता है जिसके कारण जनहित याचिकाओं की संख्या बड़ी है। दूसरे शब्दों में पीआईएल न्यायिक सक्रियता का परिणाम है। वास्तव में पीआईएल या जनहित याचिका न्यायिक सक्रियता का सबसे लोकप्रिय स्वरूप है।

न्यायिक सक्रियता का औचित्य

डॉ. बी.एल. वधेरा के अनुसार न्यायिक सक्रियता के कारण निम्नलिखित है:[4]

(i) उत्तरदायी सरकार उस समय लगभग ध्वस्त हो जाती है जब सरकार की शाखाएँ विधायिका एवं कार्यपालिका अपने-अपने कार्यों का निष्पादन नहीं कर पातीं। परिणामत: तो संविधान तथा लोकतंत्र में नागरिकों का भरोसा टूटता है।

(ii) नागरिक अपने अधिकारों एवं आजादी के लिए न्यायपालिका की ओर देखते हैं। परिणामत: न्यायपालिका पर पीड़ित जनता को आगे बढ़कर मदद पहुँचाने का भारी दबाव बनता है।

(iii) न्यायिक उत्साह अर्थात् न्यायाधीश भी बदलते समय के समाज सुधार में भागीदार बनना चाहते हैं। इससे जनहित याचिकाओं को हस्तक्षेप के अधिकार (Locus Standi) के तहत प्रोत्साहन मिलता है।

(iv) विधायी निर्वात, अर्थात ऐसे कई क्षेत्र हो सकते हैं जहाँ विधानों का अभाव है। इसीलिए न्याययलय पर ही जिम्मेदारी आ जाती है कि वह परिवर्तित सामाजिक जरुरतों के हिसाब से न्यायालयीय विधायन का कार्य करे।

(v) भारत के संविधान में स्वयं ऐसे कुछ प्रावधान हैं जिनमें न्यायपालिका को विधायन यानी कानून बनाने की गुंजाइश है, या एक सक्रिय भूमिका अपनाने का मौका मिलता है।

इसी प्रकार सुभाष कश्यप ने ऐसी कुछ आकस्मिकताओं की चर्चा की है जब न्यायपालिका अपने सामान्य क्षेत्राधिकार को लाँघकर ऐसे क्षेत्र में दखल दे जो कि विधायिका या कार्यपालिका को हो सकता है।[5]

(i) जब विधायिका अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में विफल हो गई हो।

(ii) एक 'हंग' (hung) विधायिका, जिसमें किसी दल को बहुमत ने मिला हो, की स्थिति में जब सरकार कमजोर व असुरक्षित हो और ऐसे निर्णय लेने में अक्षम हो जिससे कोई जाति या समुदाय या अन्य समूह अप्रसन्न हो सकता है।

(iii) सत्तासीन दल सत्ता खोने के भय से ईमानदार और कड़ा निर्णय लेने से डर सकता है और इसी कारण से समय लगने और निर्णय लेने में देरी करने अथवा न्यायालयों पर कठोर निर्णय लेने संबंधी दुर्भावना डालने के लिए जन मुद्दों को संदर्भित कर दिया जाता है।

(iv) जहाँ कि विधायिका और कार्यपालिका नागरिकों के मूल अधिकारों जैसे - गरिमापूर्ण जीवन, स्वास्थ्यकर परिवेश का संरक्षण करने में विफल हो, अथवा कानून एवं प्रशासन को एक ईमानदार, कार्यकुशल एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था देने में विफल हों।

(v) जहाँ कि विधि के न्यायालय का मजबूत, सर्वसत्तावादी संसदीय दलवाली सरकार द्वारा गलत नीयत या उद्देश्यों से दुरुपयोग हो रहा हो जैसा कि आपातकाल के दौरान हुआ था।

(vi) कभी-कभी न्यायालय जाने-अनजाने स्वयं मानवीय प्रवृत्तियों, लोकलुभावनवाद, प्रचार, मीडिया की सुर्खियाँ बटोरने आदि का शिकार हो जाता है।

डॉ. वंदना के अनुसार न्यायिक सक्रियता की अवधारणा में निम्नलिखित प्रवृतियां देखी जा सकती है[5a]:

(i) प्रशासनिक प्रक्रिया में सुनवाई के अधिकार का विस्तार।

(ii) बिना किसी सीमा के अत्यधिक प्रतिनिधिमंडल।

(iii) विवेकाधीन शाक्तियों को नियंत्रित करने के लिए न्यायिक नियंत्रण का विस्तार।

(iv) प्रशासन को नियंत्रित करने के लिए न्यायिक समीक्षा का विस्तार।

(v) पारदर्शी सरकार (Open Government) के बढ़ावा देना।

(vi) अवमानना शक्ति का अंधाधुध प्रयोग।

(vii) अवास्तविकता के विरूद्ध न्यायिकता का प्रयोग।

(viii) आर्थिक, सामाजिक एवं शैतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्याख्या के मानक नियमों का विस्तार।

(ix) आदेश पास करना जो कि वास्तव में असाध्य हैं।

न्यायिक सक्रियता के उत्प्रेरक

उपेन्द्र बक्शी, प्रमुख न्यायविद ने निम्नलिखित प्रकार के सामाजिक/मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं को रेखांकित किया है जो न्यायिक सक्रियता को उत्प्रेरित करते हैं[6]:

1. **नागरिक अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह मुख्यत: नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों से जुड़े मामले उठाते हैं।
2. **जन अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों पर जनांदोलनों का राज्य द्वारा दमन की स्थिति में जोर देते हैं।

3. **उपभोक्ता अधिकार कार्यकर्त्ता:** ये समूह राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्था की जवाबदेही के ढाँचे में उपभोक्ता अधिकार संबंधी मामले उठाते हैं।
4. **बंधुआ मजदूर समूह:** ये समूह भारत में मजदूरी दासता के उन्मूलन के लिए न्यायिक सक्रियता की अपेक्षा करते हैं।
5. **पर्यावरणीय कार्यवाही के लिए नागरिक:** ये समूह न्यायिक सक्रियता को बढ़ते पर्यावरणीय गिरावट तथा प्रदूषण को समाप्त करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं।
6. **वृहत सिंचाई परियोजनाओं के विरुद्ध नागरिक समूह:** इन कार्यकर्त्ताओं की भारत की न्यायपालिका से यह अपेक्षा होती है कि वह वृहत सिंचाई परियोजनाओं को रोक दे, जो कि दुनिया की किसी भी न्यायपालिका के लिए असंभव है।
7. **बाल अधिकार समूह:** ये लोग बाल श्रम, शिक्षा-साक्षरता का अधिकार, सुधार गृहों के किशोरों तथा यौन श्रमिकों के बच्चों के अधिकारों से संबंधित मामलों को उठाते हैं।
8. **हिरासती या परिरक्षण अधिकार समूह:** इनमें कैदियों के अधिकार, राज्य के संरक्षक परिरक्षण या हिरासत में महिलाएँ तथा निवारक बंदीकरण से प्रभावित व्यक्तियों के लिए की जाने वाली सामाजिक कार्रवाइयाँ शामिल हैं।
9. **निर्धनता अधिकार समूह:** ये समूह सूखे एवं अकाल के दौरान सहायता तथा शहरी गरीबों के मामलों को न्यायालय तक लाते हैं।
10. **मूलवासी जन अधिकार समूह:** ये समूह वनवासियों, संविधान की पाँचवीं एवं छठी अनुसूचियों के नागरिकों तथा अस्मिता संबंधी अधिकारों के लिए कार्य करते हैं।
11. **महिला अधिकार समूह:** ये समूह लैंगिक समानता, लिंग आधारित हिंसा एवं उत्पीड़न, बलात्कार तथा दहेज हत्या जैसे मामलों पर आंदोलन करते हैं।
12. **बार-आधारित समूह:** ये समूह भारतीय न्यायपालिका की स्वायत्तता तथा जवाबदेही संबंधी मुद्दों के लिए आंदोलन करते हैं।
13. **मीडिया स्वायत्तता समूह:** ये समूह प्रेस के साथ ही राज्य के स्वामित्व वाले जन माध्यमों की स्वायत्तता एवं जवाबदेही पर एकाग्र रहते हैं।
14. **वर्गीकृत अधिवक्ता आधारित समूह:** इस कोटि में प्रभावशाली वकीलों के समूह आते हैं जो विभिन्न मुद्दों के लिए आंदोलन करते हैं।
15. **वर्गीकृत वैयक्तिक आवेदक याचिकाकर्त्ता:** इसके अंतर्गत स्वतंत्र कार्यकर्त्ता आते हैं।

न्यायिक सक्रियता को लेकर आशंकाएँ

न्यायविद उपेन्द्र बक्शी ने ही उस भय का भी जिक्र किया है जो न्यायिक सक्रियता से उत्पन्न होता है। वे कहते हैं – ''तथ्य यह है कि अनेक प्रकार के भय इसको लेकर व्याप्त हैं। यह आवाहन भारत के सबसे कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार न्यायाधीशों के अंदर भी एक घबराहट भरी यौक्तिकता लाता है।'' वे निम्नलिखित प्रकार के भय की चर्चा करते हैं[7]:

1. **विचारात्मक भय:** (क्या वे विधायिका, कार्यपालिका या नागरिक समाज की अन्य स्वायत्त संस्थाओं की शक्ति हड़प रहे हैं?)
2. **मीमांसात्मक भय:** (क्या वे अर्थशास्त्र में मनमोहन सिंह, वैज्ञानिक मामलों में परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान के जारों, तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के कप्तानों के स्तर का ज्ञान रखते हैं?)
3. **प्रबंधन संबंधी भय:** (इस प्रकार के वादों का अतिरिक्त कार्य भार लेकर क्या वे न्याय कर पा रहे हैं, एक ऐसी परिस्थिति में जबकि पहले के बकाया मामलों का ढेर सामने है?)
4. **वैधता संबंधी व्यय:** (क्या वे अपने प्रतीकात्मक प्राधिकार की ही क्षति नहीं कर रहे जनहित याचिकाओं में आदेश पारित करके, जिनकी कि कार्यपालिका अनदेखी भी कर सकती है? क्या इससे न्यायपालिका में लोगों का भरोसा कम नहीं होगा?)
5. **लोकतंत्र संबंधी भय:** (जनहित याचिका वास्तव में लोकतंत्र का पोषण कर रही है या भविष्य की इसकी संभावनाओं को समाप्त कर रही है?)
6. **आत्मवृत्त संबंधी भय:** (सेवानिवृत्ति के पश्चात राष्ट्रीय मामलों में मेरा क्या स्थान होगा, अगर मैं इस प्रकार के वाद आवश्यकता से अधिक करूँ?)

न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक संयम

न्यायिक संयम का अर्थ

अमेरिका में न्यायिक सक्रियता तथा न्यायिक संयम - ये दो वैकल्पिक न्यायिक दर्शन हैं। न्यायिक संयम के पैरोकार मानते हैं कि न्यायाधीश की भूमिका सीमित होनी चाहिए, उनका काम इतना भर बताना है कि कानून क्या है, कानून बनाने का काम उन्हें विधायिका एवं कार्यपालिका पर ही छोड़ देना चाहिए। इसके अलावा न्यायाधीशों को किसी भी स्थिति में अपने निजी राजनीतिक मूल्यों एवं नीतिगत एजेंडा को अपने न्यायिक विचार पर हावी नहीं होने देना चाहिए। इस विचार के अनुसार संविधान निर्माताओं के मूल इरादे एवं उनसे संबंधित संशोधन स्पष्ट एवं जानने योग्य हैं, और न्यायालयों को उन्हीं से निदेशित होना चाहिए।[8]

न्यायिक संयम की पूर्वधारणा

अमेरिका में न्यायिक संयम की अवधारणा निम्न छह पूर्वधारणाओं पर आधारित हैं[9] :

1. न्यायालय मूलत: अलोकतांत्रिक है क्योंकि यह अनिर्वाचित तथा लोक मत के प्रति अग्रहणशील एवं अनुत्तरदायी है। अपने कथित एकतंत्रीय गठन के कारण न्यायालय को जहाँ तक संभव हो मामलों को सरकार की अधिक लोकतांत्रिक संस्थाओं को सुपुर्द अथवा संदर्भित कर देना चाहिए।
2. न्यायिक समीक्षा की महान शक्ति के प्रश्नवाचकीय स्रोत, एक ऐसी शक्ति जो संविधान द्वारा विशेष रूप से प्रदत्त नहीं है।
3. शक्ति के बँटवारे का सिद्धांत।
4. संघवाद की अवधारणा, राष्ट्र एवं राज्यों के बीच विभाजकीय शक्ति न्यायालयों से अपेक्षा करती है कि वे राज्य सरकारों एवं कार्मिकों की कार्यवाहियों के प्रति सम्मान का भाव रखें।
5. अ-विचारधारात्मक किन्तु सकारात्मक धारणा कि चूँकि न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार एवं संसाधनों के लिए काँग्रेस पर निर्भर है, और अपनी प्रभावकारिता के लिए जन स्वीकार्यता पर आश्रित है, इसलिए इससे जुड़े जोखिमों को ध्यान में रखकर इसे अपनी सीमा नहीं लाँघनी चाहिए।
6. यह संभ्रांत धारणा एक विधि का न्यायालय, आँग्ल अमेरिकी वैधिक परम्परा का उत्तराधिकारी होने के नाते, इसे अपने को गिराकर राजनीतिक के स्तर पर नहीं ले आना चाहिए - कानून तर्क एवं न्याय की एक प्रक्रिया है जबकि राजनीति केवल सत्ता एवं प्रभाव तक ही सीमित है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि सभी धारणाएँ (दूसरी को छोड़कर जो कि न्यायिक समीक्षा से संबंधित है) भारतीय संदर्भ में भी ठीक बैठती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ

सन् 2007 में एक मामले में फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक संयम की बात की और न्यायालयों से कहा कि वे विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य अपने हाथ में न लें। यह भी कहा कि संविधान में शक्तियों का बँटवारा किया गया और सरकार के प्रत्येक अंग को अन्य अंगों के प्रति सम्मान का भाव रखते हुए दूसरे के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। इस संदर्भ में संबंधित पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी दी[10]:

1. पीठ यानी बेंच ने कहा, ''बार-बार हमारे सामने ऐसे मामले आ रहे हैं जिनमें जजों ने विधायी अथवा कार्यपालिकीय कार्य अपने हाथ में ले लिए जिसका कोई औचित्य नहीं है। यह साफ-साफ असंवैधानिक है। न्यायिक सक्रियता के नाम पर जज अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकते और सरकार के अन्य अंगों के कार्य खुद नहीं कर सकते।''
2. पीठ ने कहा, ''जजों को अपनी सीमा जान लेनी चाहिए और सरकार चलाने की कोशिश बिल्कुल नहीं करनी चाहिए। उनमें सदाशयता तथा विनम्रता होनी चाहिए और सम्राटों की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए।
3. मोंटेस्क्यू की किताब 'दि स्पिरिट ऑफ लॉज' से उद्धरण देते हुए जिसमें तीनों अंगों की शक्तियों के विभाजन को नहीं मानने के परिणामों की चर्चा की गई है, पीठ ने कहा कि फ्रेंच दार्शनिक की चेतावनी भारत की न्यायपालिका के लिए बहुत सामयिक और सटीक है, चूँकि अक्सर अन्य दो अंगों के कार्यक्षेत्र में दखलंदाजी एवं अतिक्रमण के लिए इसकी उचित ही आलोचना होती है।'
4. न्यायिक सक्रियता किसी हाल में न्यायिक दुस्साहस में नहीं बदलना चाहिए, बेंच ने न्यायालयों को चेतावनी दी

कि न्यायनिर्णय ऐतिहासिक रुप से स्वीकृत एवं मान्य संयम तथा न्यायाधीशों की तरजीहों को सचेतन रुप से न्यून रखने की प्रणाली पर ही आधारित होना चाहिए।

5. न्यायालय प्रशासनिक पदाधिकारियों को असुविधा में न डालें और इस बात को स्वीकार करे कि प्रशासनिक अधिकारियों की प्रशासन के क्षेत्र में विशेषज्ञता है, न्यायालयों की नहीं।'
6. पीठ (बेंच) ने कहा, ''कार्यपालिका एवं विधायिका के कार्यक्षेत्र में न्यायिक अतिक्रमण का औचित्य यह बताया जाता है कि ये दोनों अंग ढंग से अपना काम नहीं कर रहे। यह मान भी लिया जाए तो यही आरोप न्यायपालिका पर भी लगाया जा सकता है क्योंकि न्यायालयों में आधी सदी से मामले लंबित हैं''
7. यदि विधायिका और कार्यपालिका ढंग से कार्य नहीं कर रही है, तो उन्हें ठीक करने की जिम्मेदारी लोगों पर है जो अगले चुनाव में अपने मताधिकार का सही रुप से प्रयोग करें और ऐसे उम्मीदवारों को मत दें जोकि उनकी अपेक्षाओं को पूरा कर सके या फिर अन्य कानूनी तरीके अपनाकर व्यवस्था को दुरुस्त करें, जैसे - शांतिपूर्वक प्रदर्शन।
8. ''उपचार यह नहीं है कि न्यायपालिका विधायी एवं कार्यपालिका कार्य अपने हाथ में ले ले, क्योंकि इससे न केवल संविधान में प्रावधानित नाजुक शक्ति संतुलन की व्यवस्था का उल्लंघन होगा, बल्कि यह भी महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका के पास इन कार्यों की न तो विशेषज्ञता है, न ही संसाधन।''
9. पीठ ने कहा, ''न्यायिक संयम राज्य के तीनों अंगों के बीच शक्ति संतुलन की व्यवस्था की संगति में है और इसे पूरकता प्रदान करता है। इसे वह दो तरीकों से करता है - पहला, न्यायिक संयम न केवल न्यायपालिका के साथ ही अन्य दो शाखाओं के बीच समानता को मान्यता देता है, बल्कि इसे बढ़ावा भी देता है। न्यायपालिका द्वारा अंतर-शाखा हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर रखकर। दूसरा, न्यायिक संयम न्यायपालिका की स्वतंत्रता की भी रक्षा करता है। जब न्यायालय विधायी या कार्यपालकीय क्षेत्रों में अतिक्रमण करता है तो इसका अनिवार्य परिणाम यह भी होगा कि मतदाता विधायक तथा अन्य निर्वाचित पदधारी इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि न्यायाधीशों की गतिविधियों पर नजदीकी नजर रखी जाए।

संदर्भ सूची

1. उनका आलेख 'दि सुप्रीम कोर्ट : 1947' फार्चून मैगजीन में प्रकाशित हुआ था।
2. ब्लैक का लॉ डिक्शनरी।
3. मेरियम वेल्सटर्स डिक्शनरी ऑफ लॉ।
4. डॉ. बी.एल. बघेरा, पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन : अ हैंडबुक, द्वितीय संस्करण, 2009, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कं., पृष्ठ 161-162
5. सुभाष सी. कश्यप : ज्युडिशियरी लेजिसलेचर इंटरफोन इन पोलिटिक्स इंडिया, नई दिल्ली, अप्रैल 1997, पृष्ठ - 22

5a डॉ वंदना, डाइमेंशन्स ऑफ जुडिशल ऐक्टिविज्म इन इंडिया, राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 33-34

6. उपेन्द्र बक्शी, ''दि अवनार्स ऑफ इंडियन ज्युडिशियल ऐक्टिविज्म : एक्सप्लोरेशन इन दि ज्योग्राफिक ऑफ (इन) जस्टिस'', एस.के. वर्मा एवं कुसुम (एड.) फिफ्टी इयर्स ऑफ दि सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया–इट्स ग्रेस्प एंड रीच, इंडिया लॉ इंस्टीच्युट एंड ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000, पृष्ठ 173-175
7. उपेन्द्र बक्शी, ज्युडिशियल ऐक्टिविज्म : लीगल एजुकेशन एंड रिसर्च इन ग्लोबलाइजिंग इंडिया, मेनस्ट्रीम, नई दिल्ली, 24 फरवरी, 1996, पृष्ठ - 16
8. इयेन मैकलीन एंड एलिस्टेयर मैकमिलन, ऑक्सफोर्ड कनसाइज डिक्शनरी ऑफ पोलिटिक्स, फर्स्ट इंडियन एडिशन, 2004, पृष्ठ-284
9. जोएल बी. ग्रॉसमैन एंड रिचर्ड एस. वेल्स (एड.) कंस्टीच्युशनल लॉ एंड ज्युडिशियल पॉलिसी मेकिंग, 1972, पृष्ठ -56-57
10. द हिन्दू, ''डान्ट क्रांस लिमिट्स, अपैक्स कोर्ट अस्क्स जज'' 11 दिसम्बर, 2007